BIHAR ME THARU JANJATI KI SAMAJIK AVN SHAIKSHANIK STHITI : NAI SHIKSHA NITI-2020 KE SANDHARBH ME EK NRIVANSHVAIGYANIK ADHYYN

डॉक्टरेट ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रस्ताव

सत्र: 2021—2022

शोध निर्देशक:

डॉ॰ राफिया काजिम
विश्वविद्यालय समाजशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर दरभंगा-846004

शोध छात्र:

अम्बेदकर कुमार साहु
पीएचडी शोधार्थी, विश्वविद्यालय समाजशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर दरभंगा-846004

विश्वविद्यालय समाजशास्त्र विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर दरभंगा-846004

PAT Roll No. 22190006

Class Roll No. 01

शोध प्रस्ताव : विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विवरण	पृष्ठ संख्या
अध्याय - 1	प्रस्तावना (Introduction)	1-3
अध्याय - 2	साहित्य अवलोकन (Review of Literature)	3-11
अध्याय - 3	शोध समस्या (Research Problem)	11
अध्याय - 4	शोध समस्या का औचित्य (justification of the Research Problem)	12
अध्याय - 5	शोध अंतराल एवं अध्ययन का दायरा (Research Gap And Scope of the Study)	12
अध्याय - 6	समस्या का संचालन (Operationalization of the Problem)	12
अध्याय - 7	शोध उद्देश्य (Research Objective)	13
अध्याय - 7	शोध प्रश्न (Research Questions)	13
अध्याय - 8	शोध प्रविधि एवं शोध क्षेत्र (Research Methodology and Research Field)	14
अध्याय - 9	शोध की सीमाएं (limitations of research)	14
अध्याय - 10	अनुसंधान की समय सारिणी (Timetable of the Research)	14-15
अध्याय - 11	प्रस्तावित अध्यायीकरण (Proposed Chapterisation)	15
अध्याय - 12	शोध अध्ययन का महत्व (Importance of the Research Study)	15
अध्याय - 13	अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य (conceptual framework)	15
अध्याय - 14	निष्कर्ष (Conclusion)	16
अध्याय - 15	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)	17

बिहार में थारू जनजाति की सामाजिक एवं शैक्षणिक स्थिति : नई शिक्षा नीति–2020 के संदर्भ में एक नृवंशवैज्ञानिक अध्ययन।

प्रस्तावना (Introduction) :–

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। समाज और व्यक्ति के उत्थान में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। वस्तुतः शिक्षा समाज का दर्पण होता है। किसी भी मानव समाज की बहुमुखी विकास सूचकांक में शिक्षा एक प्रमुख घटक के रूप में काम करती है। शिक्षा के अभाव में किसी भी राष्ट्र, समाज या व्यक्ति की सकारात्मक प्रगति असंभव है। भारतीय दर्शन में भी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को अज्ञानता से मुक्ति के साथ व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर बल दिया गया है।

1. पूर्व–औपनिवेशिक भारत में शिक्षा–व्यवस्था :–

ब्रिटिश औपनिवेशिकता से पूर्व भारत की शिक्षा–व्यवस्था स्वदेशी प्रणाली पर आधारित थी। आधुनिक विद्यालय के विपरीत भारत में छोटी–छोटी पाठशालाएँ होती थी। पाठशालाएँ प्रायः किसी मंदिर, मस्जिद या किसी शिक्षक के घर अथवा किसी पेड़ के नीचे चलती थी जहाँ स्थानीय शिक्षक या गुरूओं द्वारा स्थानीय भाषा में बच्चों को परंपरागत रूप से व्याकरण, गणित, महाजनी खाता आदि के बारे में पढ़ाया जाता था। यह शिक्षा–व्यवस्था पूर्णतः गुरु–शिष्य परंपरा पर आधारित थी जिसमें अक्सर आचार्य पुरुष होते थे। पाठशाला में महिलाओं की प्रतिनिधित्व बहुत कम होती थी। इस समय ज्यादातर गुरू पंडित व ब्राह्मण होते थे जिनका फीस निर्धारित नही होती थी। पर्शियन स्कूल में भी धर्म विशेष की प्रधानता मौजूद थी। कभी–कभार स्थानीय जमींदार और शासक भी गुरू दक्षिणा में धन देते थे।

2. औपनिवेशिक भारत में शिक्षा–व्यवस्था :–

प्रारंम्भ में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंम्पनी ने भारत में शिक्षा व्यवस्था को बढ़ावा देने में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं दिखाई। लेकिन भारत में साम्राज्य विस्तार व राजनैतिक शक्ति के कारण उसे शिक्षित भारतीयों की आवश्यकता हुई जो व्यापार और प्रशासन में उनकी सहयोग कर सकें। इसी क्रम में वारेन हेस्टिंग्स ने मुस्लिम कानून की शिक्षा हेतु भारत में वर्ष 1781 में कलकता मदरसा तथा 1791 में जोनाथन डंकन ने वाराणसी में संस्कृत कालेज की स्थापना हिन्दू दर्शन एवं कानून अध्ययन के लिए किया था। हालाँकि औपनिवेशिक भारत में शिक्षा का प्रथम प्रयास वर्ष 1813 में प्रस्तावित चार्टर अधिनियम से माना जाता है जिसमें भारत में शिक्षा की विस्तार हेतु 1 लाख रुपए का प्रावधान किया गया था। परंतु चार्टर अधिनियम द्वारा निर्दिष्ट शिक्षा के प्रारूप तथा अनुदान को लेकर मतभेद खड़ा हो गया। इसमें दो दल बन गए :– एक दल स्वदेशी पारंपरिक शिक्षा के साथ स्थानीय भाषा को प्रोत्साहन देना चाहते थे। जबकि दुसरा दल पाश्चात्य तथा व्यवहारिक शिक्षा को अंग्रेजीकरण के समर्थक थे। इसके बावजूद भारत में शिक्षा का विस्तार क्रमशः जारी रहा। मैकाले रिपोर्ट (1835) ने पाश्चात्य वैज्ञानिक शिक्षा पर बल दिया तो वुड डिस्पैच ने उच्च शिक्षा में अंग्रेजी की महता प्रदान की। वुड डिस्पैच (1854) ने प्राथमिक शिक्षा में

मातृभाषा, माध्यमिक शिक्षा में एंग्लो–वर्णाकुलर (अर्द्ध–अंग्रेजी) एवं उच्च शिक्षा में अंग्रेजी भाषा का प्रावधान किया। इसमें पहली बार महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया गया था। इसी बीच भारत में अनेकों शैक्षणिक संस्थान भी स्थापित हुए। वुड डिस्पैच के बाद देश में प्रगतिशील शिक्षा की मूल्यांकन हेतु सरकार द्वारा हंटर आयोग, भारतीय विश्वविद्यालय आयोग, सैडलर विश्वविद्यालय आयोग, हर्टोग समिति जैसे आयोगों की स्थापना की गई। वस्तुतः औपनिवेशिक भारत में आदिवासी समुदाय को पृथक रखा गया। परिणामस्वरूप ईसाई मिशनरियों के माध्यम से आदिवासी शिक्षा का विस्तार हुआ।

3. स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा–व्यवस्था :–

स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार अधिनियम 1935 तथा सार्जेंट रिपोर्ट 1944 भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण पहल थी। परंतु डॉ राधाकृष्णन की अध्यक्षता में स्थापित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948 को स्वतंत्र भारत में औपचारिक पड़ाव माना जाता है जिसमें शिक्षा का पाठ्यक्रम सुनिश्चित किया गया था। इसके बाद मुदालियर आयोग (1952) एवं कोठारी कमीशन (1964–66) की स्थापना हुई। वस्तुतः प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 कोठारी आयोग के प्रतिवेदन पर आधारित थी। इस नीति में 10+2+3 शिक्षा प्रणाली तथा हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में तरजीह दी गई। कोठारी आयोग ने स्वतंत्र भारत में पहली बार अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों में शिक्षा प्रसार की सिफारिश की थी जिसका प्रभाव राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं प्रोग्राम आफ एक्शन 1992 में भी देखने को मिलता है। इसके अलावा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में भाषा सीखने पर विशेष ध्यान केंद्रित किया गया।

इस तरह भारत में जनजातीय शिक्षा की विकास यात्रा कई चरणों से गुजरा है। भारत सरकार द्वारा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक आधार को सुदृ ढ़ करने के लिए अनेकों नीतियाँ और कार्यक्रम बनाए गए। फलस्वरूप स्वतंत्रता प्राप्ति के सात दशक बाद आज भी भारत में जनजातीय समुदाय शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए है। इन जनजातियों में से एक प्रमुख है थारू जनजाति। वस्तुतः थारू जनजाति भारत की प्रमुख मातृवंशीय गोत्र–समूह है। यह जनजाति भारत के पश्चिमोत्तर बिहार, उत्तर प्रदेश तथा उत्तरांचल के पूर्व–उत्तरी हिस्सों में निवास करती है।

पूर्वोक्त अध्ययनों से पता चलता है कि थारू जनजाति के लोग शिक्षा के क्षेत्र में गंभीर समस्याओं का सामना कर प्रवीर (2004), मिश्रा (2008)[1] रहा है। एक दशक पहले हुए पूर्वोक्त अध्ययनों के पश्चात प्रस्तुत शोध इन समस्याओं का अध्ययन करेगा कि आखिर स्वतंत्रता के 75 साल बाद भी थारू जनजाति शैक्षणिक रूप से क्यों पिछड़े रह गए है? उच्च शिक्षा एवं विश्वविद्यालयों में थारू जनजाति की प्रतिशत कम क्यों है? आखिर थारू जनजाति क्यों नहीं पढ़ पाते है? आदिवासी लड़कियों के स्कूल छोड़ने के क्या कारण हैं? मध्याह्न भोजन, छात्रवृत्ति और आरक्षण आदि जैसे राज्य के उपायों ने किस प्रकार जनजातीय शिक्षा को बढ़ावा दिया है? आजादी के बाद बनाए गए राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रभाव थारू समुदाय में क्यों असफल हो गए? क्या थारू जनजाति स्वयं पढ़ना नहीं चाहते

है? या फिर सरकारी नीतियों में कमी है? इन सभी पहलूओं का प्रस्तुत शोध में अध्ययन किया जाएगा। गहन शोध हेतु यह एक एथनोग्राफिक अध्ययन होगा। एथनोग्राफिक अध्ययन के माध्यम से यह खोज किया जाएगा कि थारू समुदाय में अंतर्निहित समस्याओं का मूल कारण कहाँ पर अवस्थित है तथा सरकारी नीति क्यों असफल हो रहे है? यह अध्ययन थारू जनजाति की जीवन को बेहतर बनाएगा। इसके अलावा प्रस्तुत शोध शिक्षा से संबंधित नीति निर्माण में भी सहायक सिद्ध होगा। क्या 'नई शिक्षा नीति 2020' थारू जनजाति में विद्यमान अशिक्षा से संबंधित विभिन्न चुनौतियों का समावेश किया है? नई शिक्षा नीति थारू जनजाति के स्वदेशी ज्ञान (Indigenous knowledge) को किस प्रकार बढ़ावा देती है? तथा इस नीति में सरकार ने थारू समुदाय के लिए कौन–कौन से सिफारिश की है? इन तमाम पहलूओं का खोज प्रस्तुत अध्ययन में किया जाएगा।

साहित्य अवलोकन (Review of Literature): –

भारत में विभिन्न जनजातीयों पर आधारित प्रमाणिक अध्ययन हमें जनजातीयों से संबंधित अन्य पहलूओं को समझने में मदद करती है। विशेष रुप से (Sujatha : 2000, उप्रेती : 2002, Xaxa : 2008, अटल : 2011, Patil : 2020) द्वारा किए गए अध्ययन हमारे ज्ञान के दायरों को बढ़ाती है। उप्रेती एवं अटल भारत में जनजातियों की भौगोलिक विवरण बताया है। शाशा ने जनजाति से संबंधित अवधारणात्मक स्पष्टीकरण पर बल दिया है तो सुजाता व पाटिल की पुस्तक देश में अनेक राज्यों में जनजातीय शिक्षा की यथास्थिति को प्रदर्शित करती है। हिन्दुओं के संम्पर्क से होने वाली थारू जनजाति में सांस्कृतिक बदलाव का अध्ययन (मजूमदार : 1993, श्रीवास्तव : 2011, अटल : 2011) ने किया है। इसके अलावा संबंधित शोध आलेख सहित (श्रीनिवास : 2016) की पुस्तक थारू जनजाति की स्थिति में भविष्यउन्मुख परिवर्तन को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

1. Srivastava, S. K. (2011)[2] की पुस्तक 'The Tharus : A Study in Cultural Dynamics' उत्तर प्रदेश की थारू जनजाति पर आधारित एक नृजातिय अध्ययन है। श्रीवास्तव ने पुस्तक में संस्कृतिकरण एवं आत्मसातीकरण के माध्यम से थारू जनजाति की सांस्कृतिक तत्वों में होने वाली गतिशीलता का तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक मुख्यतः दो बातों पर केन्द्रित है। एक ओर लेखक ने कहा है कि गैर–थारू विशेष रूप से हिन्दुओं के सम्पर्क के कारण थारू जनजाति अपनी स्वदेशी संस्कृति को भूल रहे है तथा दूसरी तरफ यह बदलाव थारू समुदाय के लिए अपरिहार्य भी है जिसकी वजह से वे अंधविश्वास से मुक्त हो रहे है। पुस्तक को कुल 16 अध्यायों में पूर्ण की गई है। प्रथम अध्याय उत्तर प्रदेश के नैनीताल स्थित थारू जनजाति की भौगोलिक निवास के साथ परिचयात्मक भूमिका पर आधारित है। अध्याय 2. में थारू जनजाति की उद्भव से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों को प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने अध्याय 3. में बताया है कि हिन्दुओं के सम्पर्क से थारू जनजाति की भौतिक संस्कृति में वृद्धि हुई है तथा थारू अब फूस की जगह पक्के खपरैल या टीन से छत बनाना

शुरू कर दिए है। इसके अलावा घरेलू सामान जैसे– ट्रंक, भूसी निकालने का मशीन आदि में भी इजाफा हुआ है। यह प्रकरण संगीत तथा पारंपरिक कलाओं में भी देखने को मिलता है। लेखक ने अध्याय 4. में थारू की आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि थारू समुदाय में परंपरागत रीति-रिवाज के अनुसार श्रम–विभाजन विद्यमान है। उन्होने कहा है कि थारूओं में पारंपरिक शिकार पद्धति विलुप्त हो रही है तथा संयुक्त परिवार के टूटने से खेतों का विखंडन भी होने लगा है। अध्याय 5. में लेखक ने थारू की समाजिक संगठन की विस्तृत चर्चा की है। वे कहते है कि थारू अपना संबंध राणा प्रताप से जोड़ते है तथा हिन्दू जाति संरचना में दूसरे स्थान पर राजपूत के रूप में रहना पसंद करते है। लेखक कहते हैं कि थारू अब स्वदेशी संस्कृति पैटर्न से अलगाव हो रहे हैं और हिंदू सामाजिक व्यवस्था की क्षत्रिय जाति के साथ पहचान और आत्मसात करने के लिए प्रेरित है। उनके सामाजिक संगठन में संस्कृतिकरण की प्रकिया दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त नातेदारी शब्दावली का मिश्रित रूप थारू समुदाय में देखा गया है। लेखक ने कहा है कि हिन्दुओं के प्रभाव से थारू की प्रस्थिति में भी गतिशीलता आई है तथा हिन्दुओं से शुद्धिकरण की विधि अपनाई जा रही है। अध्याय 6. में लेखक ने कहा है कि हिन्दू सम्पर्क तथा शिक्षा के कारण थारूओं के बीच मासिक धर्म, गर्भावस्था और जन्म के संबंध में ज्ञान बढ़ा है। वे अब हिन्दुओं के तर्ज पर नामकरण भी करने लगे है। अध्याय 7. थारू समुदाय में होने वाली विवाह के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करती है। एक तरफ थारू समुदाय में विवाह समारोह को ब्राह्मण पंडित द्वारा सप्तपदी, कन्यादान के साथ संपन्न कराने की विधि प्रचलित हुई है तो दूसरी तरफ बहुधा विवाह के स्वदेशी पद्धति विलुप्त हो रही है। लेखक ने अध्याय 8. में कहा है कि हिन्दुओं के सम्पर्क से थारूओं में मृत्यु तथा अंत्येष्टि का नियम भी बदल गए है। श्रीवास्तव ने अध्याय 9. में थारू धर्म की विश्लेषण की है। लेखक कहते है कि थारू अब हिन्दू देवी–देवताओं के साथ–साथ मुस्लिम पीर, संत और सिख गुरूओं को स्वदेशी देवताओं के समान पूजा करने लगा है। हालाँकि थारू में धर्म का निर्धारण स्थानीय आत्माओं की पूजा से की जाती है। उन्होंने कहा है कि सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों की वजह से थारूओं का सांस्कृतिक सम्पर्क बढ़ा है जिसमें ज्यादातर शिक्षित थारू शामिल है। अध्याय 10. में लेखक ने थारूओं में आयोजित होने वाली धार्मिक पर्व त्योहार का सामाजिक महत्व बताया है। थारू भी हिन्दुओं से तीज त्योहार तथा गंगा की पूजन करना सीख गए है। अध्याय 11. में लेखक ने थारू की जादू, टोना हिन्दुत्व का प्रतीक मंत्रोच्चारण में देखते है। अध्याय 12. में उन्होंने कहा है कि थारू में बीमारीयों का इलाज आज भी स्थानीय जादुई शक्ति से की जाती है। गैर थारूओं के पदार्पण से थारूओं में अनेकों नई बिमारी उत्पन्न हुई है। अध्याय 13. में थारू की अपराध कृत का वर्णन है। लेखक ने अध्याय 14. में थारू की नृत्य एवं संगीत का चित्रण प्रस्तुत किया है। श्रीवास्तव कहते है कि थारू में सबसे लोकप्रिय राष्ट्रीय नृत्य कम होते जा रहे है। अब थारू में फिल्मी गीत पसंद किए जा रहे है। लेखक अध्याय 15. में थारू खेल और पहेलियों को भी हिन्दुओं से प्रभावित माना है। पुस्तक की अंतिम 16. अध्याय में संस्कृति सम्पर्क और संस्कृति गतिशीलता से संबंधित समस्याओं का जिक्र किया है। श्रीवास्तव बताते है कि थारूओं

में अभी तक धर्मान्तरण का कोई सबूत नहीं मिला है अर्थात वे सुरक्षित है। वे सम्पर्क के कारण थारू की भाषा को भी मिश्रित पाते है। लेखक ने सांस्कृतिक संम्पर्क को थारूओं के लिए वांछित तथा अपरिहार्य मानते है। उन्होंने कहा है कि सांस्कृतिक संम्पर्क से थारूओं को कोई भी गंभीर परिणाम नहीं भुगतना पड़ा है। लेखक कहते है कि संम्पर्क का सकारात्मक और नकारात्मक दोने परिणाम देखने को मिलता है। अतः लेखक संम्पर्क को थारूओं के लिए मिश्रित आशीर्वाद मानते है। उन्होंने शिक्षा में भाषा की समस्या को स्वीकार किया है तथा इसे एक चुनौती बताते है।

2. प्रवीर, राकेश (2004)[3] की पुस्तक 'थारू : पहचान के लिए संघर्षरत जनजाति' थारू जनजाति पर आधारित एक प्रामाणिक ग्रंथ है। लेखक ने पुस्तक को कुल नौ अध्यायों में पूर्ण किया है। उन्होंनें थारू जनजाति की उद्‌भव एवं विकास यात्रा की तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। पुस्तक में थारू जनजाति की शारीरिक विशेषता, भाषा, आवास, विवाह, परिवार, सामाजिक एवं आर्थिक संगठन के साथ–साथ सांस्कृतिक पक्षों का भी नृजातिय दृष्टिकोण से उल्लेख किया गया है। अपनी पुस्तक में लेखक ने भौगोलिक वितरण के अलावा विविध संस्कार, रीति–रिवाज तथा थारू जनजाति में महिलाओं की यथास्थिति का यथावत चित्रण किया है। लेखक ने अस्तित्व के लिए संघर्षरत थारूओं की बुनियादी समस्याओं का भी विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है।

3. डॉ. उप्रेती, हरिश्चन्द्र (2002)[4] की पुस्तक 'भारतीय जनजातीयाँः संरचना एवं विकास' पुस्तक 21 अध्यायों में विभाजित है। लेखक ने पुस्तक में जनजातीय समाज की संरचना एवं विकास का नृजातिय विवरण प्रस्तुत किया है। जनजातियों का भौगोलिक एवं संख्यात्मक वर्गीकरण के अतिरिक्त, जनजातीय समुदाय में व्याप्त राजनीतिक एवं धार्मिक आन्दोलन, खानाबदोशी जनजाति के साथ–साथ भारत में विलुप्त हो रही कतिपय जनजातियों पर मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है। लेखक का कहना है कि भारतीय जनजाति बाह्य संम्पर्क के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। फलस्वरूप वे सांस्कृतिक संक्रमण के दौर से गुजर रहे है। डॉ. उप्रेती ने जनजातिय कला–संस्कृति, आर्थिक प्रणाली, धर्म एवं जादू का सामाजिक महत्व प्रस्तुत किया है। उन्होंनें जनजातीय भारत में नारी की स्थिति तथा स्वाधीनता के पश्चात भारत में विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन जनजातीय समुदाय के विशेष संदर्भ में किया है। पुस्तक की अंतिम अध्याय राजस्थान की प्रमुख जनजातियों पर आधारित है।

4. Xaxa, Virginius (2008)[5] की पुस्तक 'State, Society, and Tribe : Issues in Post–Colonial India' कुल दस अध्यायों में विभाजित है। उन्होंने जनजाति की अवधारणात्मक स्पष्टीकरण, मानदंड एवं जनजाति से संबंधित मिथक परिभाषा को दूर करने की कोशिश किया है। भारत में जनजातीय विमर्श पर आधारित यह पुस्तक जनजातिय समुदाय में चल रही हिन्दू पर–संस्कृग्रहण की प्रक्रिया से संबंधित तथ्यों को प्रस्तुत करती है। लेखक का कहना है की जनजातीय चेतना भारत के मूल निवासी होने पर कम है बल्कि इस बात को लेकर ज्यादा है कि उन्हें यानी आदिवासी के पास जल, जंगल, जमीन, भूमि और खनिज आदि संसाधनों पर किसी भी तरह का कोई शक्ति नहीं है। यह पुस्तक जनजातियों की नागरिकता अधिकार की जांच करता है। लेखक जनजातीय आंदोलन को सामाजिक गतिशीलता के रूप में देखते हुए बताया है

कि जनजाति आंदोलन सम्मान पाने पर आधारित है तथा यह एक सांस्कृतिक आंदोलन से ज्यादा राजनीतिक आंदोलन रहा है। उन्होंने जनजाति सशक्तिकरण की भी बात की है। लेखक ने अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के विकास यात्रा को तुलनात्मक रूप से मूल्यांकन किया है। उनकी तथ्यों से अनुसूचित जनजाति की शैक्षणिक स्थिति का भी पता चलता है। लेखक जनजातीय समाज में महिलाओं की सामाजिक एवं सांस्कृतिक सशक्तिकरण की वकालत भी किया है।

5. Patil, R. R. (2020)[6] की पुस्तक 'Tribal Development in India: Challenges and prospects in Tribal Education' जनजातीय शिक्षा के संदर्भ में लिखित एक महत्वपूर्ण संग्रह है। कुल 19 अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक आदिवासी विकास विशेष रुप से आदिवासी शिक्षा पर तत्काल पुनर्विचार करने पर बल देता है। इसके अलावा आश्रम विद्यालय में विद्यमान चुनौतियाँ एवं शिक्षा के क्षेत्र में जनजातीयों का पिछड़ापन इस पुस्तक का केन्द्रीय बिन्दु है। लेखक ने पीयरे बोर्दियू द्वारा प्रतिपादित सांस्कृतिक पूँजी सिद्धांत के माध्यम से जनजातीय समाज में विद्यमान गरीबी और असमानता पर आधारित शिक्षा को उजागर किया है। लेखक का कहना है कि स्वतंत्रता के बाद भी जनजातीय समाज में शिक्षा एवं आश्रम विद्यालय की स्थिति दयनीय है। उन्होंने कहा है कि समाज के बड़ा हिस्सा शिक्षा से दूर है तथा उनमें सांस्कृतिक पूँजी की कमी है। लेखक का मानना है कि शिक्षा में मुख्य भाषा के प्रयोग से जनजातीय समुदाय अपनी भाषा को भूलने लगती है। यह प्रकरण स्कूल ड्रॉप आउट अनुपात में भी गति देती है। इसके अलावा लेखक विविधतायुक्त भारतीय समाज में मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करना चुनौतीपूर्ण मानते है। यह पुस्तक जनजातीय शिक्षा में नवाचारों और प्रमुख स्वदेशी प्रथाओं का भी प्रतिनिधित्व करता है। अध्ययन में लेखक ने पाया कि जनजातीय साक्षरता दर को बढ़ाने में आवासीय विद्यालय की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। बावजूद शिक्षक के साथ विद्यार्थीयों का संबंध सुदृढ़ नहीं हुआ है तथा संस्कृति संरक्षण में यह विद्यालय असफल रहे है।

6. मजुमदार, डी. एन. एवं मदन, टी. एन. (1993)[7] की पुस्तक 'सामाजिक मानवशास्त्र परिचय' कुल 16 अध्यायों में विभाजित मानवशास्त्र तथा जनजातीय समुदाय पर आधारित एक प्रामाणिक ग्रंथ है। लेखक द्वय ने पुस्तक में भारतीय जनजाति की संस्कृति, विवाह, परिवार के अलावा कला, धर्म एवं आर्थिक संगठन के साथ–साथ न्याय व्यवस्था की तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। लेखक का कहना है भारतीय समाज में जनजातीयों की कला एवं संस्कृति पर वैज्ञानिक अध्ययन का अभाव रहा है। उन्होंने कहा है कि सरकारी नीतियों के बावजूद जनजातीय संस्कृति उपेक्षा का शिकार रहा है जिसके परिणामस्वरूप जनजातीय समुदाय अपनी संस्कृति से अलगाव महसूस कर रहे है। लेखक मानते है कि जनजातीय समुदाय मुख्यधारा से संक्रमित हो रहे है तथा अपनी विशिष्ट पहचान को भूल रहे है। उन्होंने जनजातीय वर्गीकरण में भाषा को महत्वहीन मानते हुए कहा है कि जलवायु एवं बिमारी के प्रभाव से थारू जनजाति में बी प्रकार के रक्त पाया जाता है।

7. डॉ. अहमद, जियाउद्दीन (1980)[8] की पुस्तक 'बिहार के आदिवासी' बिहार में जनजातियों की संस्कृति, धर्म, परिवार, विवाह, युवागृह जैसे विभिन्न पहलूओं पर नृजातिय विवरण प्रस्तुत करता है। यह पुस्तक कुल 32 अध्यायों में पूर्ण कि गई है जिसमें बिहार की प्रमुख उरांव, मुंडा, संथाल, बिरहोर, जनजातीयों की संस्कृति के साथ–साथ आदिवासी अर्थव्यवस्था एवं जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति का यथावत चित्रण किया गया है। लेखक बताते है कि ईसाई प्रचारकों, हिन्दू रीति–रिवाज एवं शहरीकरण के प्रभाव से बिहार की आदिवासियों में तेजी से परिवर्तन हुआ है। लेखक ने जनजातीय विस्थापन के लिए औद्योगिकरण को जिम्मेदार कारक मानते हुए इसे एक समस्या के रूप में देखते है। उन्होंने कहा है कि बिहार के आदिवासी समुदाय गरीबी–भुखमरी के लिए खुद जिम्मेदार है इसके अलावा गैर–आदिवासी ने भी उन्हें गरीब तथा संपत्तिहीन बना दिया है। लेखक ने कहा है कि मिशनरी, सरकारी पंचवर्षीय योजनाओं एवं सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के बाद भी आदिवासी समुदाय अशिक्षा सहित विभिन्न चुनौतीयों से जूझ रहे है।
8. शुक्ला, पी. के. (1994)[9] ने अपनी शोध 'The Tharus of Bihar : A Historical and Anthropological Study' में बिहार की थारू जनजाति की जीवन शैली तथा उनकी उत्पीड़न का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा है कि थारू जनजाति की बहुल जनसंख्या बिहार राज्य में निवास करती है बावजूद बिहार की थारू पर शोध अध्ययन इतिहास और मानवशास्त्र में अनुपस्थित रहा है। इसके अलावा शुक्ला ने कहा है कि बिहार की अनुसूचित जनजाति की परियोजनाओं में भी थारू जनजाति को उपेक्षित किया गया है। उन्होंने बताया है कि थारू जनजाति की खेतों को उच्च जातियों ने चलाकी से हड़प लिया, फलस्वरूप बिहार में थारू जनजाति गरीब बन गए। उन्होंने थारू महिलाओं की सौंदर्य वस्त्र व संगीत आदि की चर्चा किया है। वे थारू जनजाति में विद्यमान महिला वेश्यावृत्ति जैसी समस्या को भी उजागर किया है। लेखक ने कहा है की संयुक्त परिवार तथा विवाह से संबंधित रीति–रिवाज थारू समुदाय में समाप्त होते जा रहे हैं।
9. Yadav, Sangita (2017)[10] ने अपनी शोध आलेख 'Continuity and Change among Tharu Tribe : A Socio–Cultural Study' में उत्तर प्रदेश की थारू जनजाति का सामाजिक–सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। यादव ने कहा है कि आधुनिकीकरण, संस्कृतिकरण तथा मुख्यधारा के संम्पर्क से थारू जनजाति अपनी अद्भुत संस्कृति व परंपरा को भूल रहे है। उन्होंने बताया है कि सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण थारू जनजाति में संयुक्त परिवार विघटन की ओर अग्रसर है। लेखक ने बताया है कि उत्तर प्रदेश की थारू शिक्षा में बहुत पिछड़े है लेकिन धीर–धीरे अब सुधार हो रहा है। यादव कहते है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ने थारू जनजाति को सबसे ज्यादा प्रभावित किया है जिसके कारण थारू महिलाओं की स्वतंत्रता अब पहले से कम हो गई है।
10. Guneratne, Arjun (2022)[11] ने अपनी शोध आलेख 'Tharu as tribal, Tharu as caste : Reflections on colonial Categories along the Indo–Nepal

border' में नेपाल के तराई चितवन क्षेत्र की थारू जनजाति पर एशियाई दृष्टिकोण से अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने थारू जनजाति को जाति एवं जनजाति के विमर्श को उजागर किया है। लेखक ने कहा है कि दक्षिण एशिया में जनजाति का एक अलग मूल्य है। वे जनजाति को जाति बनाने की आवश्यकता नहीं मानते है। उन्होंने कहा है कि थारू नेपाल में जाति के रूप में है जबकि भारत में थारू जनजाति के रूप में है, यह अवधारणात्मक मूल्य समझने में सहायक नहीं हो सकता है। इसके लिए वे राज्य को जिम्मेदार मानते हैं। लेखक ने कहा है कि अंग्रेजों तथा सरकार के राजनीतिक प्रभाव के कारण थारू को जनजाति का दर्जा दी गई हैं। लेखक का कहना है कि 1950 के दशक में नेपाल में मलेरिया उन्मूलन परियोजना के द्वारा लाए गए सांस्कृतिक परिवर्तन के बाद थारू हिंदू के संपर्क में आया। उन्होंने कहा है कि ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव के कारण थारू के प्रस्थितियों में बदलाव आया है। वे कहते है की एशिया के लोग भूल जाते हैं कि स्वदेशी जातियाँ ही वास्तव में जनजातियाँ है। उन्होंने कहा है कि नेपाल सरकार की विकास नीति ने थारू को अल्पसंख्यक बना दिया है। यही कारण है कि नेपाल में थारू अब सांस्कृतिक रूप से विविध जाति समूह बन गए है।

11. Verma, Subhash Chandra (2010)[12] की शोध आलेख 'The Eco–friendly Tharu Tribe : A Study in Socio–cultural Dynamics' उत्तराखंड राज्य की उधम सिंह नगर जिले में स्थित थारू जनजाति पर आधारित एक प्राथमिक अध्ययन है। लेखक ने थारू जनजाति की सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ–साथ प्राकृतिक अनुकूलन पर बल दिया है। लेखक थारू को प्रकृति पूजक मानते हुए कहा है कि थारू की जीवन शैली पूर्णतः प्रकृति के अनुकूल होता है। उन्होंने कहा है कि बदलते परिवेश में थारू भी बदलाव के साथ मुख्य धारा से जुड़ना चाहता है। लेखक ने अध्ययन में पाया की थारू में शिक्षा का घोर अभाव है तथा शिक्षा से संबंधित कार्यक्रम असफल रहा है। थारू युवा अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत के प्रति उदासीन है। थारूओं की यह रवैया सांस्कृतिक संरक्षण में विफलता के परिचायक है।
12. Dr. Panda, Bhujendra nath (1996)[13] की पुस्तक 'Tribal Education' कुल 6 अध्यायों में विभाजित है। उन्होंने ओडिशा में साओरा जनजाति के बीच संस्कृतिकरण एवं संस्कृति संक्रमण की प्रकिया का शैक्षणिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया है। लेखक ने सांस्कृतिक समायोजन में सामाजिक गतिविधियों तथा इसका व्यक्ति के जीवन–शैली, स्वास्थ्य एवं मस्तिष्क के विकास में प्रभावशाली प्रभाव मानते है। यह अध्ययन ओडिशा के साओरा जनजाति के व्यक्तिक समायोजन, मानसिक स्वास्थ्य और साओरा आदिवासियों के बीच संस्कृतिकरण की जांच करता है। पांडा कहते है कि पाश्चात्य सभ्यता के साथ–साथ हिन्दु धर्म एवं ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से साओरा जनजाति अपनी बहुत सारे परंपरागत तौर–तरीकों तथा जीवन शैली को त्याग दिया है और हिन्दू जीवन को अपना लिया है। लेखक कहते है कि संस्कृतिकरण एवं संस्कृति संवर्धन में शिक्षा तथा शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। वे बच्चों के विविधतायुक्त दृष्टिकोण में संस्कृति संक्रमण की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण व सहायक मानते है।

13. दुबे, राजीव एवं सिंह, करूणाकर (2023)[14] की शोध आलेख 'सांस्कृतिक और सामाजिक पुनरउत्पादन में शिक्षा की भूमिका' त्रिपुरा राज्य के आदिवासी समुदाय के विशेष संदर्भ में है। शोध में लेखक द्वय ने बताया है कि शैक्षणिक संस्थानों में विद्यमान सांस्कृतिक मूल्य एवं जीवन पद्धति आज भी समाज के प्रभुत्व वर्गो पर आधारित है जिसके फलस्वरूप आदिवासी छात्रों को विभिन्न चुनौतीयों का सामना करना पड़ता है। लेखक ने शैक्षणिक कार्यवाही एवं प्रतीकात्मक हिंसा को जनजातीय बच्चों में स्कूल छोड़ने का मुख्य कारक मानते है। लेखक पाउले फ्रेरे की बैंकिंग शिक्षा व्यवस्था को भी जनजातीय शिक्षा में उपयोगी नहीं मानते है। इसके अलावा उन्होंने कहा है कि भारतीय शिक्षा में एक समान पाठ्यक्रम का होना जनजातीय बच्चों के हित में नहीं है तथा यह व्यवस्था सांस्कृतिक पुनरउत्पादन को गति देती है।

14. श्रीनिवास, एम. एन. (2016)[15] की पुस्तक 'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन' मैसूर की कूर्ग जातियों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में होने वाली परिवर्तनों पर आधारित है। यह पुस्तक कुल 5 अध्यायों में पूर्ण की गई है। प्रथम अध्याय में संस्कृतिकरण की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। श्रीनिवास के अनुसार ''संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई 'नीच' हिन्दू जाति या कोई जनजाति अथवा अन्य समूह, किसी उच्च और प्रायः 'द्विज' जाति की दिशा में अपने रीति–रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन–पद्धति को बदलता है।'' पुस्तक के दूसरे अध्याय में श्रीनिवास ने भारतीय समाज में होने वाली परिवर्तन की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए पश्चिमीकरण की अवधारणा का विश्लेषण किया है। पुस्तक के तीसरे अध्याय में लेखक ने जातिय गतिशीलता के बारे में चर्चा किया है। उन्होंने बताया है कि किस प्रकार बन्द जाति–व्यवस्था में विभिन्न जातियों के लोग खासकर जो वर्ण व्यवस्था में सबसे निम्न पद पर आसीन थे, अपने स्तर को उठाने की कोशिश की। पुस्तक के चौथे अध्याय में लेखक ने पश्चिमीकरण के प्रभाव से उत्पन्न लौकिकीकरण की प्रक्रिया पर अपनी विचार व्यक्त किया हैं। लेखक के अनुसार ''लौकिकीकरण शब्द में यह बात निहित है कि जिसे पहले धार्मिक माना जाता था, वह अब वैसा नहीं माना जाता है और उसमें विभेदीकरण की प्रक्रिया भी निहित है जिसके परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न–आर्थिक, राजनीतिक, कानूनी और नैतिक पक्ष एक दूसरे के मामले में 'सावधान' हो जाते हैं।'' पुस्तक के पाँचवे अध्याय में लेखक ने अपने अध्ययन क्षेत्र पर किये गये शोध का सार प्रस्तुत किया हैं। इसके अलावा लेखक ने शोध अध्ययन क्षेत्र के दौरान जिन कठिनाइयों का सामना किया है उसे भी रेखांकित किया है। लेखक ने अंत में विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गये शोध सम्बंधी सुझाव को भी प्रस्तुत किया हैं जो बहुत ही महत्वपूर्ण है।

15. अटल, योगेश एवं सिसोदिया, यतींद्रसिंह (2011)[16] की पुस्तक 'आदिवासी भारत : एक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विकासात्मक विवेचन' कुल 12 अध्यायों में विभाजित है। अध्याय एक में जनजातीयों की विशेषता व वर्गीकरण के साथ–साथ जनजातीय समस्या को उजागर किया गया है। लेखक ने कहा है कि भारत में बाहरी समूह विशेष रूप से हिन्दू संम्पर्क की वजह से आदिवासियों में भी अलग जाति बन गई है। लेखक

ने जनजाति के लिए वनवासी, आदिवासी तथा जनजाति शब्द को अनुपयुक्त मानते हैं। लेखक ने कहा है कि राज्य के प्रयास से जनजातीय छात्रों में शिक्षा का प्रसार होने लगा है तथा कुछ अध्यापक डॉक्टर तथा कर्मचारी आदि बन गए हैं। उन्होंने कहा है कि जनजातीयों में वस्तु विनिमय के स्थान पर मुद्रा अर्थव्यवस्था ने प्रवेश किया है। उन्होंने जनजातीयों की सामाजिक संगठन यथा परिवार, विवाह, गोत्र तथा टोटेम का महत्व बताया है। लेखक द्वय ने बताया है कि संस्कृत संक्रमण से जनजातिय रीति–रिवाज, परंपरा तथा धार्मिक संस्कृति में समस्या उत्पन्न हुई है। लेखक ने अध्याय 2 में आदिवासी जनसंख्या का परिदृश्य प्रस्तुत किया है तथा सरकार द्वारा दिए गए आदिवासी लक्षण एवं संकेतों का आलोचना करते हैं। वे कहते हैं की जनजाति का शहरों में पलायन हो रहा है। लेखक ने शिक्षा के संदर्भ में कहा है कि जनजाति में गैर–जनजाति की अपेक्षा शिक्षा का स्तर निम्न है तथा जनजाति महिलाओं में तो शिक्षा और भी निम्न है। परंतु जनजाति में गैर–जनजाति की अपेक्षा लिंगानुपात अधिक पाया गया है। अध्याय 3 में जनजाति अर्थव्यवस्था तथा जीवन निर्वाह का तथ्यात्मक विश्लेषण किया गया है। वे कहते हैं कि जनजाति आज भी कृषि के संदर्भ में पूर्णतः प्रकृति पर आश्रित है तथा वह केवल उपभोक्ता है, उत्पादक नहीं। उन्होंने जनजातीय कृषि प्रणाली का व्यापक जिक्र किया है तथा कहा है कि भोजन का स्वाद भी गैर–जनजाति से प्रभावित हुआ है। लेखक काडर जनजाति की जीवन शैली, कृषि आदि का भी विवेचनात्मक अध्ययन किया है। उन्होंने कहा है कि जनजातीय समुदाय में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई है तथा संस्कृति संक्रमण भी देखा गया है। वे छत्तीसगढ़ की कामद तथा बस्ती के मुरिया गोंडों जनजाति की कृषिकार्य के अलावा उत्तर प्रदेश के भोटिया जनजाति में प्रचलित व्यापार प्रणाली के स्वरूप का उल्लेख किया है। लेखक ने अध्याय 4 में जनजाति युवागृह की कार्य प्रणाली एवं विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। लेखक द्वय कहते हैं कि इन युवागृह में शिक्षा के कारण परिवर्तन होने लगा है तथा इन गृहों में अब फिल्मी गीत भी सुनाई देते हैं। अध्याय 5 में सामाजिक नियंत्रण की उपाय बिटलाहा की बात की गई है जो निकटाभिगमनकारी संबंध को बहिष्कृत करता है। लेखक ने अध्याय 6 में पितृसत्तात्मक और मातृसत्तात्मक जनजातीय समुदाय में प्रचलित जीवनसाथी की प्राप्ति के विभिन्न नियम तथा वरण विवाह के विशिष्ट विशेषताओं का सामाजिक महत्व बताया है। अध्याय 7 गारो मातृवंशीय जनजाति में प्रचलित वंशानुक्रमण और उत्तराधिकार नियम पर आधारित है। लेखक ने अध्याय 8 में खस जनजाति में प्रचलित बहुपति प्रथा, विवाह पद्धति के साथ–साथ पत्नियों के साथ संभोग नियम से अवगत कराया है। नीलगिरी पर्वत श्रेणी में निवास करने वाली भारत के प्राचीनतम आदिवासी टोडा की उत्पत्ति एवं दैनिक क्रियाकलाप का वर्णन अध्याय 9 में किया गया है। इसके अतिरिक्त विवाह का नियम, धनुष बाण की प्रथा का जिक्र किया गया है। उन्होंने कहा है कि कन्या वधू मूल्य प्रथा पहले प्रचलित थी लेकिन बाहरी प्रभाव से यह प्रथा कम होती जा रही है तथा आज बहुपतिक परिवार का स्थान मिश्रित परिवार लेने लगा है। परंपरात रूप से आदिवासी समुदाय में जादू टोने तथा मृत्यु संस्कार विशिष्ट और लंबे दिनों तक चलता रहा हैं लेकिन अब यह विशेषता विलुप्त होने के कगार पर है। अध्याय 10 में आदिम जातियों

में प्रचलित परंपराओं और संस्कारों की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। लेखक ने कहा है कि हिन्दू संस्कृति सम्पर्क से तथा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए जनजातीय समुदाय विभिन्न हिन्दू देवताओं का पूजन करने लगा हैं। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया बढ़ रही है तथा जनजाति अब हिन्दू कहना ज्यादा पसंद करते हैं। एक ओर उनके रहन–सहन, पूजा पाठ में हिंदुओं का छाया दिखाई देता है तो दूसरी तरफ ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से आदिवासी ईसाई बन गए हैं। हिन्दू के साथ सम्पर्क से प्रमुख धार्मिक प्रक्रियाओं का जन्म हो रहा है तथा देश की महान परंपरा से प्रभावित होकर एकता की पुनर्स्थापना और नई मिश्रित आदिम जातियाँ बन रही है। अध्याय 11 में लेखक ने सम्पर्क से होने वाली समस्या से संबंधित तथ्यात्मक समाधान बताया है। उन्होंने कहा है कि संस्कृति संम्पर्क कोई नई समस्या नहीं है अपितु यह शदियों से चली आ रही है। वे संम्पर्क के विभिन्न माध्यम तथा इसका प्रभाव भी बताया है। पुस्तक की अंतिम अध्याय 12 में स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात बनाई गई आदिवासी विकास के लिए सरकारी नीतियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

शोध समस्या (Research Problem) :–

प्रस्तुत शोध की समस्या 'बिहार में थारू जनजाति की सामाजिक एवं शैक्षणिक स्थिति : नई शिक्षा नीति–2020 के संदर्भ में एक नृवंशवैज्ञानिक अध्ययन' से संबंधित है। बिहार राज्य में थारू जनजाति की स्थिति बहुत ही चुनौतीपूर्ण रही है। सरकार द्वारा बनाए गए अनेकों नीतियाँ और कार्यक्रम के फलस्वरूप थारू जनजाति आज भी शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, सड़क, नेटवर्क की असुविधा तथा पीने की पानी जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित है। पश्चिम चम्पारण के थरूहट क्षेत्र में अभी तक एक भी सरकारी डिग्री कॉलेज की उपलब्धता नहीं है जिसके कारण थारू जनजाति में उच्च शिक्षा की समस्या विद्यमान है। बिहार में थारूओं की मुख्य आर्थिक स्रोत कृषि पर आधारित है जो अक्सर बाढ़ से प्रभावित होते है। बाल्मीकि प्रोजेक्ट का कुप्रभाव भी थारू जनजाति के जल, जंगल, जमीन पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। शिक्षा में भाषा की समस्या विद्यमान है तथा सांस्कृतिक विरासत दिन–प्रतिदिन छूटते जा रहा है साथ ही थारू जनजाति अपनी परंपरागत भाषा, शिल्पकला, रिति–रिवाज एवं स्थानीय संस्कृति को भूल रहे है। शिक्षा के अभाव में थारू जनजाति के पास सांस्कृतिक पूँजी का भी अभाव है। एक तरफ थारू में पढ़े–लिखे युवक बेरोजगार है तो दुसरी ओर अशिक्षा के कारण थारूओं की बड़ी आबादी जागरूक नहीं है। वे अंधविश्वास, झाड़–फूंक और ओझा–गुनियों पर विश्वास करते है। फलस्वरूप थारू जनजाति आज भी आधुनिकता एवं वैश्वीकरण के पायदान पर मुख्य धारा से वंचित है। इन प्रस्थितियों में नई शिक्षा नीति–2020 थारू जनजाति के संदर्भ में कितनी महत्वपूर्ण हो सकती है? तथा नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में कौन–कौन सी चुनौतियाँ आ सकती है? इन सभी समस्याओं को देखते हुए मैंनें बिहार राज्य की थारू जनजाति का चुनाव किया है।

शोध समस्या का औचित्य (justification of the Research Problem):–

भारत में दशकों से जनजातीय समस्या पर विद्वानों द्वारा ध्यान आकर्षित Thapar (1977)[17] किया गया है। भारत में जनजातिय संम्पति पर बाहरी लोगों का अतिक्रमण और नीति निर्धारण में जनजातीय मूल्य हमेशा चुनौतीपूर्ण Haimendorf (1960), शुक्ला, (1994) रहा है। मजुमदार (1993), ने कहा है कि भारतीय समाज में जनजातीयों की कला एवं संस्कृति पर वैज्ञानिक अध्ययन का अभाव तथा सरकारी नीतियों के बावजूद जनजातीय संस्कृति उपेक्षा का शिकार रहा है। सरकार द्वारा बनाए गए अनेकों नीतियाँ और कार्यक्रम के फलस्वरूप थारू जनजाति की शैक्षणिक स्थिति मिश्रा (2008), मोहंती (2020) दयनीय है। श्रीवास्तव, (2011) अटल, (2011) प्रवीर, (2004) अर्जुन (2022) मजुमदार (1993) द्वारा थारू जनजाति में सांस्कृतिक संक्रमण देखा गया है। जनजातीय शिक्षा में स्वदेशी भाषा की समस्या का अवलोकन श्रीवास्तव (2011), शाशा (2008), पाटिल (2020), सुजाता (2000), और पांडा (1996) ने किया है।

शोध अंतराल एवं अध्ययन का दायरा (Research Gap And Scope of the Study):–

भारत में थारू जनजाति की शिक्षा पर गहन अध्ययन समाजशास्त्र एवं नृवंशविज्ञान में लगभग अनुपस्थित रहा है। एस. के. श्रीवास्तव, डब्ल्यू. क्रुक, राकेश प्रवीर, जे. सी. नेसफील्ड, डी. एन. मजूमदार, एच. एच. रिस्ले, एच. आर. नेविल, ई. टी. एटकिंसन, जियाउद्दीन अहमद, पी. के. शुक्ला, गुनेरत्ने अर्जुन, एस. सी. वर्मा, शारदा प्रसाद आदि विद्वानों ने थारू के सांस्कृतिक पक्षों पर विशेष बल दिया है। इसके अलावा उपर्युक्त मानवशास्त्रीयों ने अपनी ध्यान मुख्यः उत्तर प्रदेश के नैनीताल, गोंडा, पीलीभीत, खीरी जिलों के साथ–साथ उत्तराखंड के थारूओं पर केंद्रित किया है। अतः यह बिहार की थारू पर आधारित पहली नृजातिय अध्ययन होगा जिसमें शिक्षा से संबंधित तमाम पहलूओं का गहन अध्ययन किया जाएगा।

समस्या का संचालन (Operationalization of the Problem):–

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं सरकारी कार्यक्रम थारू जनजाति की शैक्षणिक स्थिति को सुधारने में किस हद तक सफल हुआ है तथा नई शिक्षा नीति 2020 थारू जनजाति की स्वदेशी ज्ञान एवं स्वदेशी भाषा, परंपरा और जीवन शैली को किस प्रकार बढ़ावा देती है। आखिर थारू में सांस्कृतिक पूँजी का अभाव क्यों है? इसी संदर्भ में प्रस्तुत शोध की समस्या 'बिहार में थारू जनजाति की सामाजिक एवं शैक्षणिक स्थिति : नई शिक्षा नीति–2020 के संदर्भ में एक नृवंशवैज्ञानिक अध्ययन' से संबंधित है।

शोध उद्देश्य (Research Objective):–

प्रस्तावित शोध प्रस्ताव में निम्नलिखित उद्देश्य होंगेः–

1. प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य बिहार राज्य की थारू जनजाति में अंतर्निहित उन कारणों का खोज करना है जिसकी वजह से थारू समुदाय अशिक्षा की समस्या से ग्रसित है। इसके अतिरिक्त यह भी पता लगाना कि बिहार के थरूहट क्षेत्र में सरकारी नीतियाँ क्यों असफल हो रहे है तथा इसका मूल कारण कहाँ पर अवस्थित है।
2. शोध का उद्देश्य स्वतंत्रता से पूर्व एवं स्वतंत्रता के पश्चात सरकार द्वारा बनाई गई विभिन्न राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का थारू जनजाति पर प्रभावशाली परिणामों की जांच करना है।
3. शोध का उद्देश्य थारू जनजाति के संदर्भ में नई शिक्षा नीति 2020 का अध्ययन करना है।
4. शिक्षा के प्रति थारूओं की मूल्य एवं प्रतिमान का अवलोकन करना।
5. थारू जनजाति की सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक विकास में वाल्मीकि प्रोजेक्ट का मूल्यांकन करना।
6. अंत में थारूओं की शिक्षा में सुधार हेतु नीति से संबंधित आवश्यक योजना का सुझाव प्रस्तुत किया जाएगा। ताकि थारू जनजाति की जीवन बेहतर हो सके।

शोध प्रश्न (Research Questions) :–

1. स्वतंत्रता के सात दशक बाद भी थारू जनजाति शैक्षणिक रूप से क्यों पिछड़े रह गए है?
2. थारू बच्चों की स्कूल छोड़ने के क्या कारण हैं?
3. मध्याह्न भोजन, छात्रवृत्ति और आरक्षण आदि जैसे राज्य के उपायों ने किस प्रकार जनजातीय शिक्षा को बढ़ावा दिया है?
4. आजादी के बाद बनाए गए राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रभाव थारू समुदाय में क्यों असफल हो गए?
5. नई शिक्षा नीति-2020 थारू जनजाति की स्वदेशी ज्ञान एवं स्वदेशी भाषा, परंपरा और जीवन शैली को किस प्रकार बढ़ावा देती है?
6. क्या थारू जनजाति स्वयं पढ़ना नहीं चाहते है? या फिर सरकारी नीतियों में कमी है?
7. क्या बिहार के आर्थिक एवं राजनीतिक विकास में थारू जनजाति महत्वपूर्ण है या राजनीतिज्ञों द्वारा थारू के अस्तित्व को नग्नय कर दिया गया है?

शोध प्रविधि एवं शोध क्षेत्र (Research Methodology and Research Field) :–

प्रस्तावित शोध-प्रस्ताव ऐथनोग्राफिक अध्ययन के कारण यह एक प्राथमिक अध्ययन होगा, किंतु कांटेन्ट एनालिसिस हेतु शोध में द्वितीय आंकड़ो का भी उपयोग किया जाएगा।

शोध–क्षेत्र के अंतर्गत बिहार राज्य के पश्चिम चम्पारण जिला होगा। बहुस्तरीय क्लस्टर निदर्शन विधि के माध्यम से यादृच्छिक रूप से पश्चिम चम्पारण के 'रामनगर ब्लॉक' का ऐथनोग्राफिक शोध के लिए चुनाव किया जाऐगा। यह शोध सहभागी अवलोकन पद्धति पर आधारित होगी। गहन अध्ययन हेतु (for Qualitative Study) शोध में व्यक्तिक अध्ययन (Case Study) तथा केन्द्रीय समूह परिचर्चा (Focus Group Discussion) भी किया जाएगा। शोध की प्रकृति गुणात्मक (Qualitative) होने के कारण व्यक्तिक शोध उपागम (Case Study) का उपयोग किया जाएगा। शोध में प्राथमिक आंकड़ो के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का भी प्रयोग किया जाएगा। साक्षात्कार अनुसूची में कुछ प्रश्न ओपन एंडेड होगें तथा कुछ प्रश्न क्लोज एंडेड होगें।

द्वितीय आंकड़ो (Content Analysis) का संकलन विभिन्न पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं, शोध–पत्र आदि से किया जाएगा तत्पश्चात तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारणीओं द्वारा विश्लेषण प्रस्तुत कर अंत में निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण प्रस्तुत किया जाएगा।

शोध की सीमाएं (limitations of research):–

पश्चिम चम्पारण में कुल 18 ब्लॉक है। किन्तु बहुस्तरीय क्लस्टर विधि के माध्यम से केवल रामनगर ब्लॉक में यादृच्छिक रूप से 5 गाँव का चुनाव एथनोग्राफिक अध्ययन हेतु किया जाएगा।

अनुसंधान की समय सारिणी (Timetable of the Research) :–

शोध का प्रथम चरण :–

प्रथम चरण में शोध से संबंधित साहित्य समीक्षा, अवधारणात्मक स्पष्टीकरण एवं अनुभवजन्य कार्य की रणनीति बनाई जाएगी।

शोध का द्वितीय चरण :–

द्वितीय चरण में शोध को व्यवस्थित रूप से संचालित हेतु एक उत्तम शोध प्रारूप तैयार की जाएगी। एथनोग्राफिक अध्ययन, शोध क्षेत्र में डाटा एकत्रीकरण की रणनीति एवं प्रतिभागियों को शोध में शामिल करने की योजना बनाई जाएगी।

शोध का तृतीय चरण :–

तृतीय चरण में आंकड़ों से संबंधित सभी तथ्यों का संग्रहण किया जाएगा। तथ्यों का संपादन तथा कोडिंग के बाद तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारनीयन किया जाएगा तत्पश्चात आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण प्रस्तुत किया जाएगा। शोध के अंत में प्रतिवेदन एवं प्रकाशन तैयारी के पश्चात शोध प्रबंध जमा किया जाएगा।

प्रस्तावित अध्यायीकरण (Proposed Chapterisation) :–

शोध के प्रस्तावित अध्याय निम्न होगाः–

1. परिचयात्मक भूमिका
2. साहित्य अवलोकन
3. शोध प्रारूप
4. थारू जनजाति : जीवन शैली एवं सामाजिक संरचना
5. थारू जनजाति की सामाजिक–आर्थिक एवं शैक्षणिक पृष्ठभूमि
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का थारू जनजाति पर प्रभाव
7. अनुसूचित जनजाति के संदर्भ में नई शिक्षा नीति- 2020
8. निष्कर्ष एवं सुझाव

शोध अध्ययन का महत्व (Importance of the Research Study):–

1. यह शोध बिहार में थारू जनजाति की जीवन को बेहतर बनाने में सहायक होगी।
2. यह शोध थारू जनजाति के साथ–साथ भारत की संपूर्ण जनजातियों में विद्यमान शिक्षा की स्थिति को समझने में सहायक सिद्ध होगी।
3. यह शोध शिक्षा के क्षेत्र में नीति निर्माताओं तथा आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा से संबंधित नीति को क्रियान्वित करने में महत्वपूर्ण हो सकता है।
4. यह शोध सामाजिक विषमता के क्षेत्र में कार्यरत सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठन को संबंधित कार्यक्रम की योजना बनाने में मदद कर सकता है।
5. यह शोध समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र की विद्यार्थीयों के लिए एक संदर्भ ग्रंथ साबित हो सकता है।

अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य (conceptual framework):–

अनुसूचित जनजाति, नई शिक्षा नीति 2020, जनजातीय शिक्षा, सांस्कृतिक संक्रमण, स्वदेशी भाषा, नृवंशवैज्ञानिक अध्ययन, समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र, सांस्कृतिक पुनरउत्पादन।

निष्कर्ष (Conclusion) :–

शोध का विषय 'बिहार में थारू जनजाति की सामाजिक एवं शैक्षणिक स्थिति : नई शिक्षा नीति–2020 के संदर्भ में एक नृवंशवैज्ञानिक अध्ययन।' से संबंधित है। प्रस्तुत शोध बिहार राज्य की थारू जनजाति पर आधारित एक एथनोग्राफिक अध्ययन है। शोध में वर्णानात्मक एवं गुणात्मक अध्ययन पद्धति का उपयोग किया जाएगा। भारत में स्वतंत्रता से पूर्व एवं पश्चात सरकार द्वारा अनेकों नीतियाँ व कार्यक्रम बनाए गए। बावजूद स्वतंत्रता के सात दशक बाद आज भी थारू समुदाय की विकास यात्रा चुनौतीपूर्ण रही है तथा शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े हुए है। थारू जनजाति सांस्कृतिक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है तथा अपनी स्वदेशी भाषा, रीति–रिवाज एवं सांस्कृतिक विरासत को भूल रहे है। आखिर थारू समुदाय क्यों पिछड़े हुए है तथा सरकारी नीतियाँ क्यों असफल हो गए? क्या थारू अपनी यथास्थिति के लिए स्वयं जिम्मेवार है या नीतियों में कमी है? इन चुनौतीयों के फलस्वरूप नई शिक्षा नीति 2020 थारू जनजाति की शिक्षा को किस प्रकार बढ़ावा देती है। इन तमाम समस्याओं को देखते हुए प्रस्तुत शोध विषय का चुनाव किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography) :–

[1] डॉ. मिश्रा, राजेन्द्र कुमार (2008), जनजातीय विकास के नए आयाम, ए. पी. एच. पब्लिकेशन कॉरपोरेशन, नई दिल्ली, पृ. 199–208.

[2] Srivastava, S. K. (2011), The Tharus : A study in Cultural Dynamics, kala prakashan, Varanasi.

[3] प्रवीर, राकेश (2004), थारू : पहचान के लिए संघर्षरत जनजाति, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना।

[4] डॉ. उत्प्रेती, हरिश्चन्द्र (2002), भारतीय जनजातीय : संरचना एवं विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।

[5] Xaxa, Virginius (2008), State, Society, and Tribes : Issues in Post-Colonial India, Pearson Education, India.

[6] Patil, R. R. (2020), Tribal Development in India : Challenges and prospects in Tribal Education, Sage Publication India Ltd, New Delhi.

[7] मजुमदार, डी. एन. एवं मदन, टी. एन. (1993), सामाजिक मानवशास्त्र परिचय, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, नई दिल्ली।

[8] डॉ. अहमद, जियाउद्दीन (1980), बिहार के आदिवासी, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।

[9] Shukla, P. K. (1994), The Tharus of Bihar : A Historical and Anthropological Study, Indian History Congress, JSTOR, PP. 646-655

[10] Yadav, sangita (2017), Continuity and Change among Tharu Tribe: A Socio-Cultural Study, International Journal of Research Culture society, Volume (1), PP. 173-177

[11] Arjun, Guneratne (2022), Tharus as tribal, Tharus as caste : Reflections on colonial Categories along the Indo-Nepal border, HIMALAYA Volume 41 (2) PP. 6-21

[12] Varma, Subhash Chandra (2010), The Eco-friendly Tharu Tribe : A Study in Socio-cultural Dynamics, Journal of Asia Pacific Studies, Volume (1), PP. 177-187

[13] Dr. Panda, Bhujendra nath (1996), Tribal Education, A. P. H. Publishing Corporation, New Delhi.

[14] दुबे, राजीव एवं सिंह, करूणाकर (2023), सांस्कृतिक और सामाजिक पुनरउत्पादन में शिक्षा की भूमिका, राधाकमल मुकर्जी : चिंतन परंपरा, अंक (2), पृ. 15–21

[15] श्रीनिवास, एम. एन. (2016), आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

[16] अटल, योगेश एवं सिसोदिया, यतींद्रसिंह, (2011), आदिवासी भारत : एक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विकासात्मक विवेचन, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।

[17] Thapar, Romesh (1977), Tribe Caste and Religion in India, Seminar Publication.